विद्यापीठ-प्रार्थनावली

बिहार-सांस्कृतिक-विद्यापीठ
शेखपुरा : पटना-१४

व्रत-निष्ठा

★

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि ।
तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् ।
इदम् अहमनृतात् सत्यमुपैमि ।।

हे अग्नि ! आप व्रतपति हैं; जो शुभ संकल्प के साथ सत्य-मार्ग पर चलने के इच्छुक हैं, उनके आप रक्षक हैं । मैं सत्य-मार्ग पर चलने का व्रत ले रहा हूँ । मुझे आप इस व्रत के पालन का सामर्थ्य दीजिए ।

व्रतेन दीक्षाम् आप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धाम् आप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ।।

व्रताचरण से मनुष्य को दीक्षा अर्थात् उन्नत जीवन की योग्यता प्राप्त होती है । दीक्षा से दक्षिणा अर्थात् प्रयत्न की सफलता उपलब्ध होती है । दक्षिणा से अपने जीवन के आदर्शों में श्रद्धा प्रतिष्ठित होती है और श्रद्धा से सत्य प्राप्त होता है ।

—यजुर्वेद
(१.५-१९.३०)

विद्यापीठ-प्रार्थनावली

★

प्रकाशन विभाग
बिहार-सांस्कृतिक-विद्यापीठ
शेखपुरा : पटना-१४
[दूरभाष : २२८१२ एवं २२१३५]

प्रथम संस्करण :—१०००

प्रकाशन-तिथि : अनन्त चतुर्दशी : १४ सितंबर, १९७०

मूल्य : ५० पैसे

★

मुद्रक :
रामायण प्रेस, लोदीपुर, पटना-१

प्रार्थना

मनुष्य-जीवन केवल भौतिक साधनों की प्राप्ति से ही समृद्ध तथा संतुष्ट नहीं हो सकता। जबतक वह इस तथ्य को नहीं समझता, तबतक उसके नैतिक एवं आत्मिक गुणों का विकास नहीं हो सकता। मनुष्य की इच्छा दुःख से निवृत्ति और सुख की प्राप्ति के निमित्त बनी रहती है, जिसकी पूर्ति केवल भौतिक कामनाओं से ही नहीं की जा सकती। जीवन की बहुमुखी उन्नति के लिए अन्तःकरण की शुद्धि और आध्यात्मिक भावनाओं की ओर उसकी प्रवृत्ति आवश्यक है, क्योंकि जबतक ये आदर्श जीवन में उपलब्ध नहीं होंगे, तबतक अशान्त चित्त को शांति नहीं प्राप्त हो सकती और न कर्त्तव्य का उद्बोधन ही होगा।

प्रार्थना या भजन इस दिशा में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। थोड़े ही समय के लिए क्यों न हो, आध्यात्मिक स्वाध्याय तथा आत्म-चिन्तन जीवन को सरस, शिष्ट तथा विवेकशील बनने की प्रेरणा तथा शक्ति प्रदान करता है। इसलिए हमारे ऋषियों तथा मनीषियों ने आत्मचिन्तन एवं दैनिक प्रार्थना की आवश्यकता पर बल दिया है। यों तो प्रार्थना हर एक स्त्री-पुरुष के उन्नत जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी और आत्म-विकास का सूक्ष्म साधन है; विशेषतः बालक-बालिकाओं के लिए इस

प्रकार के आध्यात्मिक पाठ का विशेष महत्त्व है; बालकों के प्रारम्भिक जीवन से यदि उनमें नैतिक संस्कारों को भरा जाय, तो वे सबल, राष्ट्रनिष्ठ तथा कर्त्तव्य-परायण नागरिक बन सकेंगे।

विद्यापीठ में, जो बालकों के जीवन को भारतीय संस्कृति के अनुरूप योग्य एवं कुशल नागरिकता की शिक्षा प्रदान करने के लिए, स्थापित की गयी है, स्वाभाविक ही है कि यहाँ के आवासीय लोगों के लिए प्रार्थना और भजन की नियमित व्यवस्था की जाय। हमारा धर्म मानव-धर्म है, जिसमें किसी भी प्रकार का भेदभाव, साम्प्रदायिक या धार्मिक विद्वेष, घृणा तथा स्पृश्यता का कोई स्थान नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति को, प्रत्येक धर्म का अपने धर्म जैसा सम्मान तथा आदर करना चाहिए, यह प्रभु की आज्ञा है। विद्यापीठ में सभी धर्मों के प्रति सद्भाव तथा समभाव रखने पर विशेष बल दिया जाता है क्योंकि यह उन्नत जीवन का प्रथम सोपान है।

इस प्रार्थनावली में भारतीय भूमि से उत्पन्न ऋषि-महर्षियों द्वारा उद्घोषित ऋचाओं तथा श्लोकों का संकलन किया गया है, जिनसे परस्पर प्रेम तथा सद्भाव की शिक्षा प्राप्त होती है और वास्तविक कर्त्तव्य का ज्ञान होता है। इस प्रार्थनावली में भक्ति-गीत के अतिरिक्त कुछ राष्ट्रीय गीतों का भी समावेश किया गया है, जिनसे बालकों के अन्दर राष्ट्रीय निष्ठा एवं संस्कृति-प्रेम की भावना को जागरूक बनाकर रखा जा सके।

विद्यापीठ के वयोवृद्ध तथा ज्ञानवृद्ध कुलपति ब्रह्मचारी श्री मंगलदेव जी महाराज ने प्रार्थना की ऋचाओं एवं मंत्रों का हिन्दी रूपान्तर करने के साथ ही कुछ ऋचाओं तथा मंत्रों के अर्थों की विशेष व्याख्या करने की अनुकम्पा की है, एतदर्थ हम उनके कृतज्ञ हैं।

आशा है, यह प्रार्थनावली पाठकों के आत्मचिन्तन तथा उनके नैतिक गुणों को बढ़ाने में उपयोगी होगी।

अनन्त-चतुर्दशी: —म० स्वामी हरिनारायणानंद
१४ सितम्बर, १९७० संचालक

प्रातःकालीन प्रार्थना

ऊँ उत्तिष्ठत ! जाग्रत ! प्राप्य वरान्निबोधत !
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया
दुर्गम-पथस्तत् कवयो वदन्ति । (—क० उ०)

अनादि अविद्या और अज्ञान में डूबे हुए प्राणियो ! उठो, जागो और ज्ञानी गुरु के निकट जाकर पवित्र ज्ञान प्राप्त करो । ज्ञान ही मानव का जीवन-धन है । किन्तु ज्ञान का यह मार्ग छुरे की तेज धार के समान है जिस पर चलना कठिन है । कृपालु ज्ञानीजन उसको अपनी अलौकिक शक्ति से सुगम बना देते हैं । मानव के लिए ज्ञान के समान पवित्र अन्य कोई वस्तु नहीं है ।

ऊँ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः,
भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं
यदायुः ॥— ऋ० १।६४।८९

हे देववृन्द ! हम याचना करते हैं कि यह सांसारिक जीवन दिव्य और सुखमय बन जाय । हम सुखप्रद शब्द सुनें; कल्याणप्रद दृश्य देखें । कहीं कोई दुःखी जीवन न दिखाई पड़े । कहीं कोई अभावग्रस्त न हो । हमारा अंग-प्रत्यंग हृष्ट-पुष्ट हो; हम सदा दिव्य-लोक-निर्माण में लगे रहें ।

विशेष—ये दोनों मंत्र अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। प्राय: प्रत्येक मंगल कार्य के प्रारम्भ और अन्त में इसका पाठ होता है। सामवेद में तो इन्हीं मंत्रों से उपसंहार किया गया है। कैसी मंगल-कामना है! समाज और समाज-सेवियों का सुन्दर चित्रण है। अभावग्रस्त मनुष्य जीवन-सुख का अनुभव नहीं कर सकता। समता, एकता, स्नेह और त्याग के विना भूतल पर शांति नहीं आ सकती। मनुष्य का जीवन यज्ञमय है। विश्व को मंगलमय बनाने के लिए यह यजत्रा 'सर्व-भूत-हिते रता:' है। श्रुति समाज-सेवियों पर बहुत बड़ा उत्तरदायित्व देती है।

समाज-सेवकों का जीवन सदा कल्याणकारी लोक-निर्माण के लिए आहूत होता रहना चाहिए। मंगलकारी दृढ़ संकल्प के साथ ही जीवन की आहूति की आवश्यकता पर श्रुति बल देती रही है। इस उपयोगी, भाव-कर्त्तव्य और शीलयुक्त मंत्रोपदेश को जीवन में ढाल देने के लिए श्रुति का आग्रह जान पड़ता है। इसीलिए वेदों में अनेकत्र ये दोनों मंत्र आये हैं। इस मंत्र में 'भद्र' शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण है। भद्र का अर्थ है लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार की शाश्वत सुख-शांति; क्योंकि केवल सांसारिक सुख-शांति ही पर्याप्त नहीं। पारलौकिक सुख भी मनुष्य चाहता है।

स्वस्ति नः इन्द्रो वृद्धश्रवाः,
स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।

स्वस्तिनस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः,
स्वस्ति . नः बृहस्पतिर्दधातु ॥
—यजुर्वेद

महायशस्वी इन्द्र और सर्वज्ञ पूषा हमारा कल्याण करें, सर्व-विघ्नहर्ता तेजस्वी गरुड़ सुख-शांति दें तथा सर्व-शक्ति-सम्पन्न एवं सर्वोच्च बृहस्पति हमारे लिए मंगलप्रद हों।

ऊँ आब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्म वर्चसी जायताम्।
आराष्ट्रे राजन्यः
शूर इषव्योऽति व्याधी महारथो जायताम्,
दोग्ध्री धेनोर्वोढाऽनड्वान्,
आशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः,
सभेयो युवास्य यजमानस्य,
वीरो जायताम्। निकामे-निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु
फलवत्यो नः
ओषधयः पच्यन्ताम्। योगक्षेमो नः कल्पताम्।
—यजुर्वेद, २२मं०

हे जगदीश ! हमारे राष्ट्र में ब्रह्मतेज-सम्पन्न ज्ञानी उत्पन्न हों, शस्त्रास्त्र-सुसज्जित, शत्रु-विजयी, महारथी, वीर, धीर शासक हों, बहुत दूध देनेवाली गायें हों, बलवान बैल हों, शीघ्रगामी अश्व हों, नगर एवं ग्राम की स्त्रियाँ

विदुषी हों, रथ-संचालक साहसी और विजयी हों तथा सभ्य, सहनशील, राष्ट्रहित में जीवन की आहूति देनेवाले युवक हों। मेघ आवश्यकतानुसार जल दें, प्रचुर मात्रा में सुपक्व अन्न हों, दुर्लभ वस्तु की प्राप्ति हो और उसकी रक्षा करने की शक्ति हो।

विशेष—इस ऋचा में श्री-शक्ति-सम्पन्न राष्ट्र का मनोहर चित्र है। किन-किन साधन-सामग्रियों से राष्ट्र शक्ति सम्पन्न बनता है, उसकी आवश्यकता का सुन्दर रूप है। इन साधन-सामग्रियों के अभाव में किसी भी राष्ट्र का संचालन असम्भव है। वर्तमान राष्ट्रीय जीवन में इनकी आवश्यकता और अधिक बढ़ गयी है। ज्ञानी समाज की आँखें हैं, समाज को उनसे प्रकाश मिलता रहता है। शासन-यंत्र निःस्वार्थ व्यक्तियों के बिना बेकार रहता है। अस्तु, अस्त्र-शस्त्र-सुसज्जित एवं रण-विजयिनी सेना तथा कुशल सेनापति-युक्त दृढ़ शासन-यंत्र राष्ट्र की रक्षा और संचालन के लिए महत्त्वपूर्ण है। दुग्ध के बिना समाज सशक्त नहीं बन सकता। वह जीवन का अनिवार्य आहार है। गायों को धर्म की माता भी कहा जाता है। विदुषी माताएँ ही सभ्य और वीर पुत्र पैदा कर समाज की शोभा बढ़ा सकती हैं। बैल भारत-जैसे कृषि-प्रधान देश के लिए अभिन्न अंग हैं। घोड़े का भी कम महत्त्व नहीं है। युवक देश के प्राण हैं। शिष्ट, विनम्र, शीलवान, भद्र, सभाचतुर और राष्ट्र के जीवन-यज्ञ में

प्राण दान देनेवाले यजमान के विना राष्ट्रीय जीवन पनप नहीं सकता। युवक ही राष्ट्रीय यज्ञ के यजमान हैं। इसलिए उनके स्वास्थ्य की मंगल-कामना इन मंत्रों में की गई है। अन्न मानव-जीवन का प्राणाधार है। इसके अभाव में राष्ट्र सदा भिखारी और दुर्बल बना रहता है। दैववशात् प्राप्त अलभ्य पदार्थ भी रक्षा के अभाव में हाथ से चले जाते हैं। अतः प्राप्त वस्तु की रक्षा करने की शक्ति संचित करने की आवश्यकता रहती है। सुदृढ़ राष्ट्र के बिना व्यक्ति या समाज का जीवन अशान्त बना रहता है। अपनी अवस्था के अनुसार व्यक्ति या समाज का कर्म-धर्म भी नहीं चल सकता। इसीलिए राष्ट्र-धर्म को सर्वोपरि कहा गया है। राष्ट्र-जीवन के निर्माण के लिए सर्वस्व त्याग को परम कर्त्तव्य माना गया है। मनुष्य के लिए सर्वप्रिय और सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्राण है। परमात्मा की भक्ति में सब कुछ समर्पण करनेवाले की जो गति-मुक्ति होती है, वही-राष्ट्र-हित में प्राण देनेवाले की होती है।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बंधुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

—महाभारत

हे देवों के देव ! तुम्हीं हमारे माता-पिता, बन्धु-मित्र, विद्या, धन एवं सर्वस्व हो।

विशेष—गांधारी द्वारा की गई यह सर्वप्रिय और मनोहर प्रार्थना महाभारत से ली गई है।

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनन्त-रूप ॥
वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥
नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥

—गीता ११।३८-४०

तुम्हीं आदिदेव, पुराण-पुरुष और इस जगत के परम आधार हो। यथार्थ ज्ञाता और ज्ञेय अर्थात् जानने की वस्तु भी तुम ही हो। तुम्हीं श्रेष्ठ धाम हो और प्रकाश-पुंज एवं अमर पद हो। हे अनन्त-रूप ! तुम्हीं विश्व में

व्याप्त हो। वायु, यम, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, ब्रह्मा आदि भी तुम्हीं हो। तुम्हें हजारों बार नमस्कार है, बार-बार नमस्कार है। हे सर्वात्मन्! सामने से, पीछे से और सभी ओर से आपको नमस्कार है। आप अनन्त-वीर्य और अपरिमित शक्ति-सम्पन्न हैं। सबमें व्याप्त होने से आप ही सब हैं।

विशेष—गीता के उपर्युक्त श्लोक बहुत महत्वपूर्ण और भावयुक्त हैं। विश्व के सभी बड़े धर्मों में इसे महत्व प्राप्त हुआ है। किंकर्त्तव्य-विमूढ़ अर्जुन भगवान कृष्ण से आत्म-निवेदन करते हैं। भक्तिपूर्वक उनके रूप का वर्णन करते हैं। हम मानव अल्पज्ञ और असमर्थ हैं। हमारी दुष्प्रवृत्तियां शत्रु-सेना बनकर सामने आ रही हैं। इन पर हमें विजय प्राप्त करनी है। सर्व-शक्ति-सम्पन्न सहायक के बिना हम इसपर विजयी नहीं हो सकते। इसीलिए सर्वसमर्थ और कृपालु भगवान की शरण एवं आशीर्वाद से समर्थ बन विजेता बनने की कामना रहती है। वास्तविक विजेता वही है जो अपनी दुष्प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त कर अपने ही साथ विश्व का भी कल्याण करता है।

ॐ तमीश्वराणाम् परमं महेश्वरम्
तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतिनां परमं परस्तात्,
विदाम देवं भुवनेश मीड्यम्।

—श्वेताश्वतरोपनिषद

(इसका अर्थ सांध्य प्रार्थना में देखें।)

अग्नि-हवन-प्रार्थना

मार्जन-मंत्र

ॐ आपो हिष्ठा मयो भुवः।
ॐ तान् ऊर्जे दधात नः।
ॐ महेरणाय चक्षसे।
ॐ यो वः शिव तमो रसः।
ॐ तस्य भाजयते हनः।
ॐ उशतीरिव मातरः।
ॐ तस्मा अरंग मामवः।
ॐ यस्य क्षयाय जिन्वथ।
ॐ आपो जन यथा च नः॥

ब्रह्मगायत्री-मंत्र

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्॥

उस सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, सर्वस्रष्टा, तेजोमय, परमात्मा का हम ध्यान करते हैं। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को अच्छी दिशाओं में प्रेरित करे।

अग्नि-उद्‌बोधन-मंत्र

ऊ॰ उद्‌बुध्य स्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टा पूर्ते ससृ-
जेथामयञ्च । अस्मिन्त्सधस्थे ऽअध्युत्तरस्मिन् विश्वे-
देवाः यजमानश्च सीदत स्वाहा ।

आचमनीय-मंत्र

ऊँ शन्नो देवीरभिष्टये आपो भवन्तु पीतये
संय्योरभि श्रवन्तु नः ॥

हवन-मंत्र

ऊँ प्रजापतये स्वाहा; इदं प्रजापतये न मम ।
ऊँ इन्द्राय स्वाहा; इदं इन्द्राय न मम ।
ऊँ अग्नये स्वाहा; इदं अग्नये न मम ।
ऊँ सोमाय स्वाहा; इदं सोमाय न मम ।
ऊँ अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मा कुरु स्वाहा ।
ऊँ यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा असि स्वाहा
ॐ एवं मा ँसुश्रवः सौश्रवसं मा कुरु स्वाहा ।
ऊँ यथात्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपा असि स्वाहा ।
ऊँ एवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपा सा भूयाः स्वाहाः ।

समिधाधान-मंत्र

ऊँ अग्नये समिध महार्षं वृहते जातवेदसे यथा त्वमग्ने
समिधा समिध्यसि एवमहमायुषा मेधया वर्चसा
प्रजया पशुभि र्ब्रह्मवर्चसेन समिन्धे स्वाहा।
ऊँ जीवपुत्रो ममाचार्यो मेधा व्यहं सान्य निरा-
करिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चसन्नादो भूयाः
स ँ स्वाहा।
ऊँ एषा ते अग्ने समिधया वर्द्धस्व चाचाप्यायस्व
वर्द्धिषीमहि च वयमाचप्यासिषीमहि स्वाहा।

स्विष्टकृत होम-मंत्र

ऊँ अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मा कुरु स्वाहा।
ऊँ यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा असि स्वाहा।
ऊँ एवं मा सुश्रवः सौश्रवसं कुरु स्वाहा।
ऊँ यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपा असि
स्वाहा।
ऊँ एवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयाः स ँ
स्वाहा।

अग्नि से आशीर्वाद-ग्रहण का मंत्र

ऊँ तनुपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि।
ऊँ आयुर्दा अग्नेऽसि आयुर्मे देहि।
ऊँ वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि।
ऊँ अग्ने यन्मे उनन् तन्मे आपृण।

देव-प्रार्थना-मंत्र

ऊँ मेधां मे देवः सविता आदधातु।
ऊँ मेधां मे देवी सरस्वती आदधातु।
ऊँ मेधां मे ऽश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ।
ऊँ अंगानि च म आप्यायन्ताम्
ऊँ वाक्च म आप्यायताम्।
ऊँ चक्षुश्च म आप्यायताम्
ऊँ श्रोत्रञ्च म आप्यायताम्
ॐ यशोबलञ्च म आप्यायताम्।

भस्म-धारण-मंत्र

ॐ त्र्यायुषं यमदग्ने कश्यपस्य त्र्यायुषं यद्दे यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्।

अभिवादन-मंत्र

अभिवादये त्वामहं भो वैश्वानर !
अभिवादये त्वामहं भो गुरुदेव !

विद्यामन्दिर की प्रार्थना

ॐ अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम । —ईशोपनिषद्-१८

ॐ सहनाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै । तेजस्वीनाऽवधीतमस्तु मा विद्विषावहै ।

परमात्मा हम दोनों की एक साथ रक्षा करें, हम दोनों का एक साथ पालन करें, हम दोनों एक साथ शक्ति-संचय करें; हमारा अध्ययन तेजपूर्ण हो जिससे विश्व का मंगल हो । हम दोनों परस्पर स्नेहमय जीवन बितायें । —कठोपनिषद्

अन्न-ब्रह्म की प्रार्थना

ॐ शन्नो देवीरभीष्टये आपो भवन्तु पीतये सं-
य्योरभिः श्रवन्तु नः ॥
ॐ सहनाववतु सह नौ भुनक्तु सहवीर्यं करवावहै,
तेजस्वीनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥

सायंकालीन प्रार्थना

ॐ अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव
वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥
—ईशावास्योपनिषद्—१८

हे प्रकाश-स्वरूप परमात्मन् ! तू सर्वज्ञ एवं सर्व-कर्माध्यक्ष हो, कर्मों के यथार्थ स्वरूप को जाननेवाले हो। मैं अल्पज्ञ हूं और कर्मों की गति गहन है। तुम मुझे ज्ञान प्रदान करो और सुन्दर मार्ग से ले चलो। मुझ से अज्ञान और कुत्सित कर्मों को दूर कर दो, ताकि जीवन अमर, सुखी और शान्त हो जिसका मैं भिखारी हूँ। मैं तेरे लिए अनेकशः नमस्कार करता हूं।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्याऽपिहितं मुखम् ।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥—ईशा०,१५

हे पूषन्, जगत-पालक आदित्य-स्वरूप परमात्मन् !

स्वर्णमय पात्रवत् तुम्हारी बाह्य चमक से, तुम्हारा अन्तर्यामी सत्य-स्वरूप ढँक गया है। मुझ सत्यधर्मा (सत्यव्रती) के दर्शनार्थ तुम अपनी उस बाह्य चमक को हटा लो। वह पुरुष सर्वव्यापी सत्य ब्रह्म है; मेरा भी यथार्थ स्वरूप वही है।

वशेष—माया के मोहक आवरण से सत्य-रूप ब्रह्म आवृत्त जान पड़ता है। उस आवरण को हटाये विना दर्शनार्थी को ब्रह्म का दर्शन असम्भव है। अतः मायामय चादर को परमात्मा की सहायता से दूर फेंक देना चाहिए। यह श्रुति का आदेश है। माया नामरूप कर्म-स्वरूप है; अतः असत्य, मिथ्या और परिवर्तनशील है। ब्रह्म अर्थ निर्विकार और अविनाशी है। किन्तु इस मिथ्या माया ने ब्रह्म को ढँक रखा है। नाम-रूप-कर्म परिवर्तनशील हैं। इसको इस प्रकार समझना ठीक होगा—

स्वर्ण एक ठोस द्रव्य है। हार, कंठा, कर्णफूल आदि उसके अनेक नाम-रूप हैं। ये नाम-रूप उसीमें हैं। कि इन विबिध नाम-रूपों में स्वर्ण ढँका हुआ है। इन नाम-रूपों में परिवर्तन हो सकता है, किन्तु मूल द्रव्य सोना अपरिवर्तित ही रहेगा। सारांश यह कि हार, कंठा, कर्ण-फूल आदि नाम-रूप असत्य और सोना सत्य है। उसी प्रकार मायावरण असत्य और काल्पनिक है तथा ब्रह्म सत्य है।

शन्नो मित्रः शं वरुणः शं विष्णुः शं प्रजापतिः
शन्नो इन्द्रो वृहस्पतिः शन्नो भवत्वर्यमा
शन्नो मित्रः शं वरुणः शं विवस्वाञ्छमन्तकः
शं रुद्राः शं वसवः शमादित्यः शमग्नयः
शन्नो महर्षयो देवाः शं देवी शं वृहस्पतिः
ब्रह्म प्रजापतिर्धाता लोका वेदाः सप्तर्ष्योग्नयः
तैर्मे कृतं स्वस्त्ययनं इन्द्रो मे शर्म यच्छतु
ब्रह्मा मे शर्म यच्छतु विश्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु
सर्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु ॥
यानि कानिच्छिान्तानि लोकेसप्त ऋषयो विदुः
सर्वाणि शं भवन्तु मे शं मे अस्त्वभयम् मेऽस्तु ।

मित्र, वरुण, विष्णु, प्रजापति, इन्द्र, देवगुरु वृहस्पति और पितरश्रेष्ठ अर्यमा हमारा कल्याण करें। मित्र, वरुण, विवस्वान् (सूर्य) शमन्तक और यमराज (धर्मराज) हमारा मंगल करें।

एकादश रुद्र, अष्ट वसु, द्वादश आदित्य, तीन अग्नि देव तथा महर्षिगण एवं देवमाता अदिति तथा सर्वोच्च ज्ञानी वृहस्पति हमारा कल्याण करें।

मंत्रार्थ का दिग्दर्शन—ये मंत्र मंगल-सूक्त हैं। यज्ञारम्भ तथा अन्त में इसका पाठ कर्त्तव्य माना गया है। ये शान्ति-सूक्त भी कहलाते हैं।

विशेष—सर्वोच्च ब्रह्म में विश्व-सर्जन की जब स्वाभाविक प्रवृत्ति जगती है तो अपनी योगमाया से, पहले ही अनेक नाम-रूपों में अपनी विभूति का सर्जन कर उससे जगत का सर्जन, पालन एवं रक्षण करने लगता है। ऐसा होने पर भी उसकी यथार्थ परमोच्च सत्ता ज्यों की त्यों बनी रहती है। उन्हीं विभूतियों का उल्लेख इन मंत्रों में है। ये सभी विभूतियाँ अङ्ग-प्रत्यङ्ग हैं तथा सर्वोच्च चेतना-सम्पन्न परमात्मा अङ्गी है, पूर्ण है।

इन मंत्रों में 'शर्म' और 'शं' शान्ति और कल्याण के अर्थ में प्रयुक्त है। वेद में पुनरुक्ति दोष नहीं, गुण ही मानी जाती है। अभ्यास के लिए ये शब्द बार-बार आते हैं।

मानव-जीवन अल्पज्ञ और अल्प-शक्ति-युक्त है। अपने अधूरे साधनों से परम लक्ष्य—सुख—की प्राप्ति में असमर्थ-सा जान पड़ता है। अतः अक्षय सुख के साधन तथा अक्षेय सुख तथा उसके यथार्थ मार्ग की प्रार्थना की, कामना, परमोच्च विभूतियों से इस सूक्त में पायी जाती है। यह उचित ही जान पड़ता है।

जिन मित्र एवं वरुण की चर्चा सूक्त में आई है मानव के आध्यात्मिक जीवन में उनका बड़ा महत्त्व है। देव के बिना समष्टि एवं व्यष्टि का जीवन ठहर नहीं सकता। देव प्रकाश और शक्ति के स्रोत हैं।

सारा विश्व चार हिस्सों में विभक्त है—विषय (वाह्य संसार), करण (इन्द्रियाँ), इन्द्रियों की शक्ति, (देव-प्रकाश) और समस्त पदार्थों का ज्ञाता (साक्षी-चेतन)। सभी वाहरी वस्तुओं का ज्ञान इन्द्रियों से होता है। पदार्थों को जानने का, इनके सिवा दूसरा कोई साधन नहीं है। नेत्र के विना रूप का एवं जिह्वा के विना रस का ज्ञान नहीं होगा। वाह्य विषयों के ज्ञान के लिए भगवान की ओर से पाँच इन्द्रियाँ मिली हैं। इसी प्रकार कर्म करने के लिए भी पाँच इन्द्रियाँ मिली हैं। इन इन्द्रियों का राजा मन है। ये सभी हमारे जीवन के साथी हैं। इनके विना मनुष्य का यह देह पिण्ड न ठहर सकता है और न चल ही सकता है। इन इन्द्रियों को भी प्रकाश-शक्ति का सहयोग नहीं मिले, ये सव साथ छोड़ दें तो इनसे कुछ नहीं वन सकेगा। जैसे प्रकाश-शक्ति के अभाव में आँखें वेकाम हो जाती हैं। प्रत्येक इन्द्रिय में शक्ति-संचार करनेवाले को ही देव कहते हैं। इन्हीं देवों का उल्लेख उक्त सूक्तों में हैं, जिनसे प्रसन्न होकर वे हमारा मंगल करते रहें, हमारे जीवन की रक्षा करते रहें। प्रजापति ब्रह्मा उनके सहयोगी धाता और यथार्थ ज्ञाता सप्तर्षियों तथा अग्निदेवों ने लोक में तथा वेद में जो मेरे लिए परम मंगल प्रशस्त किया है, उस मार्ग और यथार्थ कल्याण के प्रदाता इन्द्र, ब्रह्मा, विश्वेदेव तथा सभी देवगण हों, सप्तर्षियों ने जिस शान्ति-सुख का सभी लोकों

में वर्णन किया है, वह मुझे प्राप्त हो; मैं अभय, सुखी और मुक्त-जीवन बन जाऊं।

विश्वेदेव देवों का विशेष वर्ग है जो मनुष्य के समस्त कर्मोंका द्रष्टा माना जाता है। कर्म के अनुसार उसके फल को भोगने के लिए कर्ता जहाँ, जिस जीवन में रहे, विश्वेदेव उसे वहाँ पहुँचा देते हैं।

एकादश रुद्रः—रुद्र, हर, बहुरूप, कपर्दी, रैवत, शंभु, त्र्यम्बक, अपराजित, मृग व्याध, शर्व और विशांपति।

· अष्ट वसुः—ध्रुव, धर, सोम, अहः, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास।

द्वादश आदित्य—धाता, मित्र, अर्यमा, शक्र, वरुण, भग, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वष्टा और विष्णु। ये देव-माता अदिति के पुत्र कहे जाते हैं।

महर्षिगण—मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलह, क्रतु, वशिष्ठ, भृगु, अग्नि और नारद। इनमें भृगु, अग्नि और नारद को अलग कर देने पर सप्त वर्ग बन जाता है। सप्तर्षि वर्ग मनु और इन्द्र के साथ प्रत्येक मन्वन्तर में बदलते रहते हैं। सप्तर्षि सूक्ष्म जगत के संचालन में सह-योग देते हैं।

असतो मा, सद्गमय;
तमसो मा, ज्योतिर्गमय
मृत्योर्माऽमृतं गमय।

हे जगदीश ! मुझे असत-माया, मिथ्या—से सत्य ब्रह्म की ओर ले चलो। हमें अज्ञान-अंधकार से ज्ञान—ज्योति की ओर ले चलो, मृत्यु से अमरत्व की ओर ले चलो।

विशेष—ये उपनिषद्-वाक्य बड़े महत्वपूर्ण हैं। मानव जीवन की यही तीन प्रधान मांगें हैं। इसी के लिए वन, पर्वत चारों ओर की खाक साधक छानता रहता है।

मनो यज्ञो नः कल्पताम्। प्राणो यज्ञो नः कल्पताम्। द्यावा पृथिवीभ्यां नः परिद्धातु, सर्वेभ्यो भूतेभ्यो नः परिद्धातु।

हे जगदीश ! मेरा मन और प्राण तुम्हारी तथा विश्व की सेवा में लगे। हमारा जीवन माता-तुल्य पृथिवी और पिता-तुल्य देव, लोक तथा समस्त प्राणियों की सेवा में रत हो। हमारे जीवन को इसी पवित्र सेवा-कार्य में लगा दो।

ॐ यो देवानाम् प्रभवश्चोद्भवश्च, विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः, हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं, स नो बुध्या शुभया संयुनक्तु ॥ —श्वेता०

जिस सर्वज्ञ रुद्रस्वरूप परमात्मा ने देवताओं को उत्पन्न कर शक्ति दी है और सर्वप्रथम प्रजापति को जन्म दिया है, वही परमेश्वर हमारी बुद्धि कोप वित्र कर्मों और ज्ञान से युक्त कर दे, यही मेरी प्रार्थना है।

याते रुद्रशिवातनुरघोराऽपापकाशिनी तयानस्तन्वा शन्तमयागिरि शन्ताभीचाकशीहि ॥ —यजु०

हे विश्व-पावन-गिरिशन्त रुद्र ! तुम पर्वतादि जड़ को सचेतन बनाकर उद्धार करनेवाले हो, तुम अत्यन्त निर्मल, सौम्य, पावक, सुन्दर, कल्याणप्रद और प्रकाशपुंज-स्वरूप हो। तुम्हारी दृष्टि दिव्य एवं दयापूर्ण है, जिससे जड़ भी चेतन बन सुखमय हो जाता है। उस दिव्य दृष्टि से देखकर क्या मुझे निहाल नहीं करोगे ? हम तुम्हारी शरण में हैं। आशा लगी है।

विशेष—यह मंत्र भी बहुत महत्वपूर्ण है। शिवत्व की प्राप्ति जीव का अंतिम लक्ष्य है। जीव जबतक शिव नहीं बन जाता तबतक शाश्वत सुख-शांति नहीं मिल सकती। उपासक उपास्य में विलीन होकर ही पूर्ण विश्राम पा सकता है।

तमीश्वराणाम् परमं महेश्वरम् ,
तं देवतानां परमं च दैवतम् ,
पतिं पतिनां परमं परस्तात् ,
विदाम देवं भुवनेश मीड्यम् ।

सर्वेश्वर, देवाधिदेव, सर्वोच्च, सर्वनियन्ता और सर्व-प्रकाशक भुवनेश ही शरण्य हैं, स्तुत्य हैं, ज्ञेय हैं।

विशेष—एक अक्षय शक्ति-सम्पन्न, परमोच्च, सर्वज्ञ परम तत्त्व है जिसके प्रकाश और शक्ति से सभी भुवनेश

और देव वनकर अपना उत्तरदायित्व सम्भालते हैं। यथार्थ में सर्वेश, देवाधिदेव तथा सवका स्वामी तो वही है। उसीकी शरण सब प्रकार से अभयप्रद, शाश्वत और सुखद है। जो मानव की अहर्निश चाह है।

ऊँ यो आत्मदा वलदा यस्य विश्व उपासते
प्रशिषं यस्य देवाः यस्यच्छायामृतं, यस्य मृ युः,
कस्मै देवाय हविषा विधेम।

जो बुद्धि और शक्तिदाता है, सारा विश्व जिसकी उपासना करता है, जिसका आलोक और आदेश पा देवगण अपने कार्य में रत हैं, जिसकी शरण में शाश्वत, सुख एवं अमरपद तथा विमुखता में मृत्यु है, उसी सुख-स्वरूप परमात्मा को हम सर्वभावेन सर्वस्व समर्पण करते हैं।

विशेष—यह मंत्र समर्पण मंत्र है और वड़ा उपदेश-प्रद है। सर्वस्रष्टा, सर्वप्रदाता, सर्वाधार परमात्मा ही संसार तथा भोग या जीवन का साधन होता है। भोक्ता भी उसीकी वस्तु है। दूसरे तो योंही अपना अधिकार अहंकार एवं अज्ञानवश समझ बैठते हैं और अनेक अनर्थ करते हैं। अपने स्वार्थी जीवन से संसार को नरक-कुण्ड वनाते हैं। मातृवत श्रुति यहाँ कल्याणप्रद उपदेश दे रही है कि सभी वस्तु प्रभु को सौंप दो क्योंकि सब कुछ उसीका है। इस समर्पण में ही कृतार्थता है। यज्ञांत में इस मंत्र को अवश्य पढ़ा जाता है।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदुच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।

हे ईश्वर! तुम्हीं पूर्ण हो; तुम्हीं से संसार पूर्णता प्राप्त करता है। तुम इतने पूर्ण हो कि यदि तुममें से पूर्णता ले भी ली जाय, तो भी तुम पूर्ण ही रहते हो। तुम्हारे नामके स्मरण से सम्पूर्ण न्यूनता पूर्णता में बदल जाती है।

शान्ति-पाठ

हरिः ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः
शान्तिरस्तु, पुष्टिरस्तु, सुशान्तिर्भवतु :

———

प्रकीर्ण मन्त्राणि

प्रातःस्मरणम्

प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्म-तत्त्वम्
सच्चित्-सुखं परमहंस-गति तुरीयम् ।
यत् स्वप्न-जागर-सुषुप्तववैति नित्यम्
तद् ब्रह्म निष्कलमहं न च भूत-संघः ॥

मैं सवेरे अपने हृदय में स्फुरित होनेवाले आत्मतत्त्व का स्मरण करता हूँ। जो आत्मा सच्चिदानन्द (सत्, ज्ञान और सुखमय) है, जो परमहंसों की अन्तिम गति है, जो चतुर्थ अवस्था रूप है, जो जाग्रति, स्वप्न और निद्रा, तीनों अवस्थाओं को हमेशा जानता है और जो शुद्ध ब्रह्म है, वही मैं हूँ—पंचमहाभूतों से बनी हुई यह देह में नहीं हूँ।

प्रातर्भजामि मनसो वचसामगम्यम्
वाचो विभान्ति निखिला यदनुग्रहेण ।
यन्नेति नेति' वचनैर्निगमा अवोचु-
स्तं देव-देवमजमच्युतमाहुरग्रयम् ॥

जो मन और वाणी के लिए अगोचर है, जिसकी कृपा से चारों तरह की वाणी प्रकट होती है, वेद भी जिसका वर्णन 'वह यह नहीं, यह नहीं' कहकर ही कर सके हैं, उस ब्रह्म का सवेरे उठकर मैं भजन करता हूँ।

ऋषियों ने उसे 'देवों का देव', 'अजामा', 'पतनरहित' और 'सबका आदि' कहा है।

प्रात नंमामि तमसः परमर्क-वर्णम्
पूर्ण सनातन-पदं पुरुषोत्तमाख्यम् ।
यस्मिन्निदं जगदशेषमशेष-मूर्तौ
रज्ज्वां भुजंगम इव प्रतिभासितं वै ॥

मैं सवेरे उठकर उस सनातन पद को नमन करता हूँ, जो अन्धकार से परे है, सूर्य के समान है, पूर्ण पुरुषोत्तम नाम से पहचाना जाता है और जिसके अनन्त स्वरूप के भीतर यह सारा जगत् उसी तरह दिखाई देता है, जिस तरह रस्सी में साँप ।

सरस्वती-वन्दना

या कुन्देन्दु-तुषार-हार-धवला या शुभ्र-वस्त्रावृता
या वीणा-वरदण्ड-मण्डित-करा या श्वेत-पद्मासना ।
या ब्रह्माऽच्युत-शंकर-प्रभृतिभि र्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेष-जाड्यापहा ॥

जो कुन्द्र, चन्द्र या बरफ के हार के समान गौरवर्ण हैं, जिसने सफेद वस्त्र पहना है, जिसके हाथ वीणा के सुन्दर दण्ड से सुशोभित हैं, जो सफेद कमल पर बैठी हैं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सभी देव हमेशा जिनकी स्तुति करते हैं, समस्त अज्ञान और जड़ता का जो नाश करने वाली हैं, वह देवी सरस्वती मेरी रक्षा करें ।

शान्ताकारं भुजग-शयनं पद्मनाभं सुरेशम्
विश्वाधारं गगन-सदृशं मेघ-वर्णं शुभाङ्गम् ।
लक्ष्मी-कान्तं कमल-नयनं योगिभिर्ध्यान-गम्यम्
वन्दे विष्णुं भव-भय-हरं सर्व-लोकैक-नाथम् ॥

संसार के भय का नाश करनेवाले, सब लोकों के एकमात्र स्वामी विष्णु को मैं नमस्कार करता हूँ। उनका आकार शान्त है, वे शेषनाग पर लेटे हैं, उनकी नाभि से कमल उत्पन्न हुआ है, वे सब देवों के स्वामी हैं, वे सारे विश्व के आधार हैं, वे आकाश की तरह अलिप्त हैं और उनका वर्ण मेघ की तरह श्याम है, वे कल्याणकारी गात्रवाले हैं, सब सम्पत्ति के स्वामी हैं, उनके नेत्र कमल के समान हैं। योगी उन्हें ध्यान द्वारा ही जान सकते हैं।

कर-चरण - कृतं वाक् - कायजं कर्मजं वा
श्रवण-नयनजं वा मानसं वाऽपराधम् ।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत् क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे ! श्रीमहादेव ! शम्भो ! ॥

हाथों से या पैरों से, वाणी से या शरीर से, कानों से या आँखों से मैं जो भी अपराध करूँ, वह कर्म से उत्पन्न हो या केवल मानसिक हो, अमुक करने से हो या अमुक न करने से हो, हे करुणा-सागर, कल्याणकारी महादेव, उन सबके लिए तू मुझे क्षमा करो।

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
कामये दुःख-तप्तानां प्राणिनामार्ति-नाशनम् ॥

अपने लिए न मैं राज्य चाहता हूँ, न स्वर्ग की इच्छा करता हूँ। मोक्ष भी मैं नहीं चाहता। मैं तो यही चाहता हूँ कि दुःख से तपे हुए प्राणियों की पीड़ा का नाश हो।

स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्ताम्
न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः ॥
गो-ब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यम्
लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु ॥

प्रजा का कल्याण हो; राज्यकर्ता लोग न्याय के मार्ग से पृथ्वी का पालन करें।(खेती और ज्ञान-प्रसार के लिए) गौ और ब्राह्मणों का सदा भला हो और सभी लोग सुखी बनें।

नमस्ते सते ते जगत्कारणाय
नमस्ते चिते सर्व-लोकाश्रयाय।
नमोऽद्वैत-तत्त्वाय मुक्ति-प्रदाय
नमो ब्रह्मणे व्यापिने शाश्वताय ॥

जगत् कें कारणरूप, सत् स्वरूप हे परमेश्वर! तुझे नमस्कार है। सारे विश्व के आधार-रूप हे चैतन्य! तुझें नमस्कार है। मुक्ति देनेवाले हे अद्वैत-तत्व! तुझे नमस्कार है। हे शाश्वत और सर्वव्यापी ब्रह्म! तुझे नमस्कार है।

त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरेण्यम्
त्वमेकं जगत्-पालकं स्व-प्रकाशम् ।
त्वमेकं जगत् कर्तृ-पातृ-प्रहर्तृ
त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम् ॥

तू ही एक शरण लेने-योग्य आश्रय का स्थान है। तू ही एक वरणीय इच्छा करने-लायक है। तू ही एक जगत् का पालन करनेवाला है और अपनें ही प्रकाश से प्रकाशित है। तू ही एक इस सृष्टि को पैदा करनेवाला, पालनेवाला और इसका संहार करनेवाला है और तू ही एक निश्चल और निर्विकल्प है।

भयानां भयं भीषणं भीषणानाम्
गतिः प्राणिनां पावनं पावनानाम् ।
महोच्चैः पदानां नियन्तृ त्वमेकम्
परेषां परं रक्षणं रक्षणानाम् ॥

तू भयों को भय दिखानेवाला है, भयंकरों का भयंकर है। तू प्राणियों की गति है और पवित्र वस्तुओं को भी पवित्र करनेवाला है। श्रेष्ठ स्थानों का एकमात्र नियन्ता है। तू पर से भी पर है और रक्षकों का भी रक्षक है।

वयं त्वां स्मरामो वयं त्वां भजामो
वयं त्वां जगत्-साक्षि-रूपं नमामः ।
सदेकं निधानं निरालंबमीशम्
भवाम्भोधि-पोतं शरण्यं व्रजामः ॥

हम तेरा स्मरण करते हैं और तुझे भजते हैं; जगत् के साक्षीरूप तुझको हम नमस्कार करते हैं। हम सत्-स्वरूप, एकमात्र निधान, निरालम्ब और इस भव-सागर के लिए नौकारूप तेरी शरण जाते हैं।

यं ब्रह्मा-वरुणेन्द्र-रुद्र-मरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः सांग-पद-क्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थित-तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः॥

ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, रुद्र और मरुत् दिव्य-स्तोत्रों से जिसकी स्तुति करते हैं, सामवेद का गान करनेवाले मुनि, अंग, पद, क्रम और उपनिषद् के साथ वेदमंत्रों से, जिसकी स्तुति करते हैं, योगीजन समाधि लगाकर परमात्मा में लीन मन द्वारा जिसके दर्शन की कमना करते हैं तथा देवता और दैत्य जिसकी महिमा को पार नहीं पाते, उस परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ।

पुरुषसूक्तम्

[यह सूक्त ऋग्वेद (मं० १०, सू० १०), यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्व वेद—इन चारों वेदों में नाममात्र पाठान्तर के साथ पाया जाता है। इस सूक्त में उस आदि पुरुष का वर्णन है जिससे यह प्राणि-जगत् उत्पन्न हुआ है। इसमें सृष्टि-निर्माण को एक यज्ञ बताया गया है, जिसमें पुरुषको पशु बनाकर उसकी बलि दी जाती है और तब उसके अङ्ग सारे संसार के अङ्ग बन जाते हैं, जिनके द्वारा वह सृष्टि का निर्माण करता है। इस सूक्तमें ब्राह्मण आदि वर्णों और एक देवतावाद का वर्णन मिलता है। पुरुष को भूत, वर्तमान और भविष्य का स्वामी बताया गया है। उसके एक पाद से सारी भूमि व्याप्त है, शेष तीन पादों से द्युलोक आदि। उस पुरुष से ही वसन्त आदि ऋतुएँ, ऋक्, साम, अथर्व या गायत्री आदि छन्द और यजुर्वेद उत्पन्न हुए हैं। ब्राह्मणादि वर्ण उसके अङ्ग, सूर्य उसका चक्षु, वायु प्राण और अग्नि मुख है। ऋषियों ने इस पुरुषयज्ञ का विस्तार किया है। स्वर्ग-नरक की प्राप्ति कर्मरूप यज्ञ द्वारा ही होता है; इसलिए इस कर्म में निरन्तर लगे रहना मनुष्य का कर्तव्य है और पुरुष (परमात्मा) निमित्त (कारण) बनकर किस प्रकार सृष्टिका निर्माण करता है, इसका इस सूक्त में निरूपण है। मनुष्य की सृष्टि करने से पूर्व ही वह उसके उपयोगी पदार्थों—वृक्ष, पशु, सूर्य,

चन्द्र आदि की सृष्टि कर देता है। कर्म के अनुसार लोक-व्यवस्था के लिये चार वर्ण आवश्यक हैं और अपने-अपने धर्म में निरत रहकर आत्मज्ञान द्वारा मानव-मात्र को जीवन की सफलता प्राप्त करनी चाहिये, यह इस सूक्त का तात्पर्य है। इस सूक्त का देवता पुरुष है, महर्षि नारायण है; अन्तिम छन्द त्रिष्टुप् और शेष छन्द अनुष्टुप् हैं।]

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिँ सर्व्वतस्स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१॥

अव्यक्तादि से विलक्षण चेतनावान् जो पुरुष है, (वह) हजारों शिरोंवाला, हजारों आँखोंवाला, हजारों पैरोंवाला (है)। वह, ब्रह्माण्ड को सभी ओर से, घेरकर, दस अङ्गुलिपरिमित स्थान को, अतिक्रमण करके स्थित है।

विशेष—'सहस्र' शब्द उपलक्षण है—इसका अर्थ होता है हजारों अर्थात् अनन्त। संसार के जितने प्राणी हैं उनमें अन्दर-बाहर वह व्याप्त है, इसलिये सभी प्राणियों के सिर, आँख और पैर उस पुरुष के सिर, आँख और पैर हैं। अतः वह अनन्त सिरों, आँखों और पैरोंवाला है। 'दशाङ्गुलम्' भी उपलक्षण है। दसों अङ्गुलियाँ मोड़ने पर मुट्ठी बँध जाती है। उसके अन्दर जो वस्तु है वह अपने अधीन होती है। अर्थात् यह ब्रह्मांड तो उस पुरुष की मुट्ठी के अन्दर है ही (उससे व्याप्त या घिरा है ही) इसको अति-क्रमण करके अर्थात् इसके बाहर भी वही है, यह तात्पर्य है।

पुरुषऽएवेद ँ् सर्व्वं य्यद्भूतं य्यच्च भाव्व्यम्।
उतामृतत्वस्ये शानोयदन्नेनातिरोहति ॥ २ ॥

यह जो (दृश्यमान) जगत् है, (वह) सब पुरुष ही है। जो, अतीत (जगत् है) और जो भविष्यत् (होनेवाला जगत्) है (वह भी पुरुष ही है)। और, देवत्व का (वह पुरुष) स्वामी है। जो भक्षणीय द्रव्यों द्वारा उत्पन्न होता है (उस चराचर जीवजात का भी वह स्वामी है)।

विशेष—सायण के अनुसार अन्तिम पद का 'क्योंकि' भोग के कारण (कारणावस्था को छोड़कर) इस दृश्यमान जगत्रूप-अवस्था को वह (पुरुष) प्राप्त होता है, यह अर्थ है।

एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायाँश्च पूरुषः।
पादोऽस्य व्विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतन्दिवि ॥३॥

इतना (भूत, भविष्य, वर्तमान रूप में दृश्यमान सम्पूर्ण जगत्) इस पुरुष का सामर्थ्यविशेष ही है। और, वह पुरुष तो इस सामर्थ्य से भी बहुत बड़ा है (क्योंकि) सारे प्राणी इस पुरुष के चतुर्थांश हैं। इसके शेष तीन भाग विनाशरहित स्वप्रकाशरूप में (स्थित) हैं।

विशेष—यद्यपि ईश्वर का परिमाण ज्ञेय नहीं, अतः उसके चार पैरों की कल्पना नहीं की सकती, किन्तु परमात्मा की अपेक्षा जगत् की अत्यन्त न्यूनता दर्शाने के लिये यह कल्पना की गई है।

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥ ४ ॥

तीन पैरोंवाला (भूत, भविष्यत् और दृश्यमान जगत् को छोड़कर शेष) परमात्मा ऊपर (अज्ञान के कार्यरूप संसार से परे) है । इसका एक अंश इस संसार में, फिर-फिर (सृष्टि और प्रलय द्वारा) आता है । इसके बाद विविध प्रकार से (देव, मनुष्य, पशु आदि रूप में) बना वह पुरुष साशन (खानेवाले अर्थात् चेतन) और निरशन (न खानेवाले अर्थात् अचेतन) जगत् को अभिव्याप्त कर स्थित है ।

ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥५॥

उस आदिपुरुष से हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुआ । उसी विराट की देह को आधार बनाकर (अर्थात् उसके ऊपर समष्टि देहाभिमानी) पुरुष उत्पन्न हुआ । वह (उत्पन्न हुआ) विराट् प्राणी के शरीरों से बढ़कर था । इसके बाद (उसने) पृथ्वी को (बनाया) तत्पश्चात् (उन प्राणियों के) शरीरों को (बनाया) ।

विशेष—यहीं से सृष्टि का क्रम चला है—आदिपुरुष (परमात्मा) से विराट् (हिरण्यगर्भ), उसकी देह से पुरुष (समष्टिदेहरूप पुरुष), इसके बाद पशु-पक्षी, फिर भूलोक, तत्र प्राणियों के शरीर बने । सात धातुओं (रस, रक्त,

मेदे, मांस, अस्थि, मज्जा, शुक्र) से पूर्ण किये जाने के कारण शरीर को पुर कहा है।

तस्माद्यज्ञात्सर्व्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्ज्यम्।
पशूँस्ताँश्चचक्क्रे वायव्यानारण्ण्या ग्राम्म्याश्च्च ये। ६॥

सर्वात्मक पुरुष का जिसमें आह्वान किया गया है, (ऐसे) उस मानस-यज्ञ से दही से युक्त घी बनाया। वायु देवता है जिनका ऐसे (सर्पादि), जंगल में रहनेवाले (हरिण आदि) पशुओं को और जो गाँवों में रहनेवाले (पशु) हैं उनको भी बनाया।

विशेष—देवादिकों ने जो मानसी सृष्टि की उसमें उन्होंने पहले दही-घी आदि भोज्य पदार्थों को उत्पन्न किया, फिर वायु के आधार पर जीवित रहनेवाले सर्पादि, आरण्यक एवं ग्राम्य पशुओं को उत्पन्न किया, यह तात्पर्य है।

तस्माद्यज्ञात्तसर्व्वहुतऽऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दा ँ सि जज्ञिरे तस्म्माद्यजुस्तस्म्मादजायत ॥७॥

सर्वात्मक पुरुष जिसमें आहूत किया गया है, (ऐसे) उस यज्ञ से ऋग्वेद, उसीसे सामवेद प्रादुर्भूत हुए। उसीसे छन्द (गायत्री-त्रिष्टुप् आदि) उत्पन्न हुए, (और) उसीसे यजुर्वेद उत्पन्न हुआ।

तस्म्मादश्वाऽअजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्म्मात्तस्म्माज्जाताऽअजावयः ॥८॥

उक्त यज्ञ से घोड़े और जो (घोड़ों के अतिरिक्त गा ।·

खच्चर आदि) दोनों ओर (ऊपर-नीचे) दाँतोंवाले हैं, (वे भी) उत्पन्न हुए। प्रसिद्ध है कि उसीसे गायें उत्पन्न हुईं (और) उसीसे बकरियाँ और भेड़ें भी उत्पन्न हुईं।

तं यज्ञम्बर्हिषि प्रौक्षन्न्पुरुषञ्जातमग्रतः।
तेन देवाऽअयजन्त साद्ध्याऽऋषयश्च्च ये ॥ ९ ॥

यज्ञ के साधनभूत उस पुरुष को मानसिक यज्ञ में जल छिड़ककर पवित्र किया। (जो) सृष्टि से पूर्व पुरुष रूप में उत्पन्न हुआ था। उस पुरुष से देवताओं ने और सृष्टि के साधन में लगे प्रजापति आदि (और) मंत्र-द्रष्टा ऋषियों ने मानस-यज्ञ को सम्पन्न किया।

विशेष—अर्थात् जैसे यज्ञ में पशु पर अभिषेक करके उसे पवित्र किया जाता है, उसी प्रकार इस मानस-यज्ञ में पुरुष का प्रोक्षण हुआ। उसके द्वारा देवता, प्रजापति, आदि और ऋषियों ने अपने-अपने संकल्प से सृष्टि को उत्पन्न किया।

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्यासीत्किं बाहू किमूरू पादाऽउच्च्येते ॥१०॥

(देवताओं ने) विराट्रूप पुरुष को संकल्प से उत्पन्न किया। (तब) कितने ही प्रकार से उसकी कल्पना की (अर्थात् उसे बनाया)। इस विराट् का मुख कौन था, बाहु कौन था, उरु कौन था, पैर कौन-सा कहा जाता था।

विशेष—ब्राह्मण आदि की सृष्टि रचने के लिए इस ऋचा में विराट् पुरुष की जिज्ञासा की गई है।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्न्य÷कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्य÷पद्भ्या ँ शूद्रोऽअजायत ॥११॥

इस प्रजापति का ब्राह्मण जाति से युक्त पुरुष मुख था (अर्थात् मुख से उत्पन्न हुआ)। क्षत्रिय जाति-विशेष पुरुष दो भुजा बनाया (अर्थात् दो भुजाओं से उत्पन्न हुआ। तव इस (प्रजापति) का जो उरु है, (वह) वैश्य जातिवाला पुरुष हुआ (अर्थात् उरु से वैश्य उत्पन्न हुआ)। और, दो पैरों से शूद्र जातिवाला पुरुष उत्पन्न हुआ।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्योऽअजायत।
श्श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत॥१२॥

इसी प्रकार (प्रजापति के) मनसे चन्द्रमा उत्पन्न हुआ। (उसके) चक्षु से सूर्य उत्पन्न हुआ। मुख से इन्द्र और अग्नि उत्पन्न हुए तथा प्राण से वायु उत्पन्न हुआ।

नाभ्याऽआसीदन्तरिक्ष ँ शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत।
पद्भ्याम्भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँऽअकल्पयन् ॥१३॥

(उस प्रजापति की) नाभि से भू और स्वर्ग के मध्य का भाग अर्थात् भुवर्लोक हुआ। (उसके) सिर से द्युलोक उत्पन्न हुआ। दो पैरो से पृथ्वी, कान से दिशाएँ; इसी प्रकार विविध लोकों को (देवताओं ने) बनाया।

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
व्वसन्तोऽस्यासीदाज्ज्यं ग्रीष्म्मऽइद्ध्मः शरद्धविः ।।१४।।

शरीर बन जाने के बाद देवताओं ने अपने पुरुष-रूप हवि से मानसिक यज्ञ किया । (तब) इस यज्ञ का वसन्त ऋतु घी (जिसका होम किया जाता है), ग्रीष्म ऋतु इंधन (तथा) शरद् ऋतु हवि (चरु) हुआ ।

विशेष—इसका तात्पर्य यह है कि शरीरों के निर्माण के बाद (आगे) विस्तार के लिए देवताओं ने मानसिक सृष्टि की जिसमें सर्वप्रथम वसन्त, ग्रीष्म और शरद् ऋतुओं को (संकल्प से) उत्पन्न किया ।

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिध ÷ कृताः ।
देवा यद्यज्ञन्तन्वानाऽअबध्नन्न्पुरुषम्पशुम् ।।१५।।

इस मानस-यज्ञ के सात छन्द (आहवनीय की ३, उत्तरवेदिका की ३ और आदित्य १) परिधियाँ थीं । (तथा) सात का तीन गुना अर्थात् २१ (१२ महीने, ५ ऋतुएँ, ३ लोक और १ आदित्य) समिधाएँ बनाईं । (विराट् नामक) जो पुरुष है उस (पुरुष) को मानस-यज्ञ को करते हुए देवताओं ने पशु-रूप में बाँधा (अर्थात् स्वीकार किया) ।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्म्माणि प्रथमान्न्यासन् ।
ते ह नाकं महिमान ÷ सचन्त यत्र पूर्व्वे साध्याः
सन्ति देवाः ।।१६।।

वताओं ने संकल्प से प्रजापति को पूजा। (उनसे) वे सिद्ध (जगद्रूपविकार को) धारण करनेवाले (पहले) हुए। जिसमें (विराट् की उपासना से) प्राचीन सिद्धि प्राप्त करनेवाले देवता रहते हैं, (उस) स्वर्ग को वे उपासक (महात्मा) लोग निश्चय ही प्राप्त करते हैं।

विशेष—पूर्वोक्त सम्पूर्ण ऋचाओं में कहे हुए भावों को संक्षेप में इस ऋचा में दुहरा दिया गया है।

———

भक्ति-गीत

[१]

(राग सारंग—ताल कहरवा)

जय जय सुर-नायक, जन सुख-दायक,
प्रणत पाल भगवंता।
गो-द्विज-हितकारी जय असुरारी,
सिंधुसुता-प्रियकंता।
पालक सुरधरणी अद्भुत करणी,
मर्म न जाने कोई।
जो सहज कृपाला दीनदयाला,
करहु अनुग्रह सोई॥

[२]

(राग धनाश्री—तीन ताल)

जाऊँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे।
काको नाम पतित-पावन जग,
केहि अति दीन पियारे॥
कौने बराइ विरद-हित,
हठि-हठि अधम उधारे॥

खग, मृग, व्याध, पषान, विटप जड़
जवन कवन सुर तारे ॥
देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज सब
माया-बिवस बिचारे ॥
तिनके हाथ 'दास तुलसी' प्रभु
कहा अपुनपौ हारे ॥

[३]

(राग हमीर—ताल कहरवा)

श्री रामचन्द्र कृपालु भज मन हरण भव-भय दारुणम्,
नव-कंज-लोचन कंज-मुख, कर-कंज, पदकंजारुणम् । १

कन्दर्प अगणित अमित छवि नव नील नीरज सुन्दरम्,
पट-पीत मानहु तड़ित रुचि शुचि नौमि जनक-सुतावरम् ।२

भज दीन-बन्धु दिनेश दानव दैत्यवंश निकन्दनम्,
रघुनन्द आनन्द-कंद कौशल-चंद दशरथ-नन्दनम् । ३

शिर मुकुट कुण्डल तिलक चारु उदार अंग विभूषणम्,
आजानु भुज शर-चाप-धर संग्राम-जित खर-दूषणम् । ४

इति वदति तुलसीदास शंकर शेष मुनि-मन रंजनम्,
मम-हृदय-कुंज निवास करु कामादि खल-दल गंजनम् । ५

[४]

(राग वृन्दावनी सारंग— तीन ताल)

रहना नहिं देस विराना है ॥
यह संसार कागद की पुड़िया, बूंद पड़े घुल जाना है ॥
यह संसार काँटे की बाड़ी, उलझ-उलझ मरि जाना है ॥
यह संसार झाड़ औ' झांखर, आग लगे बरि जना है ॥
कहत कवीर सुनो भाई साधो, सतगुरु नाम ठिकाना है ॥

[५]

(राग विहाग—तीन ताल)

नाम जपन क्यों छोड़ दिया ?
क्रोध न छोड़ा, झूठ न छोड़ा,
सत्यवचन क्यों छोड़ दिया ?
झूठे जग में दिल ललचा कर
असल वतन क्यों छोड़ दिया ?
कौड़ी को तो खूब सम्हाला
लाल रतन क्यों छोड़ दिया ?
जेहि सुमिरनते अति सुख पावे
सो सुमिरन क्यों छोड़ दिया ?
खालस इक भगवान भरोसे
तन, मन, धन क्यों छोड़ दिया ?

[६]

(राग भैरवी—तीन ताल)

हे जग-त्राता, विश्व-विधाता,
हे सुख-शान्ति-निकेतन हे !
प्रेम के सिन्धो, दीन के बन्धो,
दुःख-दरिद्र-विनाशन हे !
नित्य, अखंड, अनंत, अनादि,
पूरण ब्रह्म, सनातन हे !
जग-आश्रय, जग-पति, जग-वंदन,
अनुपम, अलख, निरंजन हे !
प्राणसखा, त्रिभुवन-प्रतिपालक,
जीवन के अवलंबन हे !

[७ [

(राग पहाड़ी माँड—ताल कव्वाली)

उठ जाग मुसाफिर भोर भई
अब रैन कहाँ जो सोवत है ।।
जो सोवत है सो खोवत है
जो जागत है सो पावत है ।। १ ।।
टुक नींद से अँखियाँ खोल जरा,
ओ गाफिल, प्रभु से ध्यान लगा ।

यह प्रीत करन की रीत नहीं,
प्रभु जागत है तू सोवत है ॥ २ ॥
अय जान, भुगत करनी अपनी,
ओ पापी, पाप में चैन कहाँ ?
जब पाप की गठरी सीस धरी,
फिर सीस पकड़ क्यों रोवत है ? ॥३ ॥
जो काल करे सो आज कर ले,
जो आज करे सो अब कर ले।
जब चिड़ियन खेती चुगि डाली,
फिर पछताये क्या होवत है ? ॥ ४ ॥

———

राष्ट्रीय गीत

[१]

वंदे मातरम् !

(राग काफी—ताल दीपचंदी)

वंदे मातरम् !

सुजलाम् सुफलाम् मलयजशीतलाम्

शस्यश्यामलाम् मातरम् !

वंदे मातरम् !

शुभ्र ज्योत्स्ना पुलकित यामिनीम्,

फुल्लकुसुमित-द्रुमदल-शोभिनीम्,

सुहासिनीम् सुमधुरभाषिणीम्,

सुखदाम् वरदाम् मातरम् !

वंदे मातरम् !

—बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय

[२]

राष्ट्रगान

(राग कोरस—ताल धुमाली)

जनगण-मन-अधिनायक जय हे
भारत-भाग्य-विधाता !

पंजाव, सिन्धु, गुजरात, मराठा,
द्राविड़, उत्कल, वंग ।
विन्ध्य, हिमाचल, यमुना, गंगा,
उच्छल जलधि-तरंग ।

तव शुभ नामे जागे,
तव शुभ आशिष माँगे ।
गाहे तव जय-गाथा,
जनगण-मंगलदायक जय हे,
भारत-भाग्य-विधाता !

जय हे ! जय हे! जय हे !
जय, जय यज जय हे !

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

[३].

जय-जय प्यारा भारत देश !

जय-जय प्यारा भारत देश ।।
जय-जय प्यारा जग से न्यारा
शोभित सारा देश हमारा
जगत मुकुट जगदीश दुलारा
जय सौभाग्य सुदेश ।।१।।

स्वर्गिक शीश-फूल पृथिवी का
प्रेम मूल प्रिय लोकत्रयी का
सुललित प्रकृति नटी का टीका
ज्यों निशि का राकेश ।।२।।

जय-जय शुभ्र हिमाचल शृंगा
कलरव निरत कलोलिनी गंगा
भानु-प्रताप चमत्कृत अंगा
तेजो-निधि तव वेश ।।३।।

जग में कोटि-कोटि युग जीवै
जीवन सुलभ अमीरस पीवै
सुखद वितान सुकृत का सीवै
रहे स्वतंत्र हमेश ।।४।।

—श्रीधर पाठक

[४]

सारे जहाँ से अच्छा

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा !
हम बुलबुलें हैं इसकी, यह गुलसिताँ हमारा !
गुरवत में हों अगर हम रहता है दिल वतन में
समझो वहीं हमें भी दिल हो जहाँ हमारा !
परवत वो सबसे ऊँचा, हमसाया आसमाँ का
वह संतरी हमारा, वह पासवाँ हमारा !
गोदी में खेलती हैं जिसकी हजारों नदियाँ,
गुलशन हैं जिनके दम से रश्केजिनाँ हमारा !
ऐ आवे रोदे गंगा ! वह दिन है याद तुझको,
उतरा तेरे किनारे जब कारवाँ हमारा !
मजहब नहीं सिखाता आपस में वैर रखना,
हिन्दी हैं हम, वतन है हिन्दोस्ताँ हमारा !
यूनान, मिस्रो रूमाँ सब मिट गये जहाँ से,
अबतक मगर है बाकी नामोनिशाँ हमारा !
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
सदियों रहा है दुश्मन दौरे-जमाँ हमारा !

—डॉ० मुहम्मद इकबाल

[५]

वह देश कौन-सा है ?

मनमोहिनी प्रकृति की जो गोद में बसा है,
सुख स्वर्ग-सा जहाँ है, वह देश कौन-सा है ?
जिसका चरण निरंतर रत्नेश धो रहा है,
जिसका मुकुट हिमालय, वह देश कौन-सा है ?
नदियाँ जहाँ सुधा की धारा बहा रही हैं,
सींचा हुआ सलोना, वह देश कौन-सा है ?
जिसके बड़े रसीले फल, कंद, नाज, मेवे,
सब अंग में सजे हैं, वह देश कौन-सा है ?
जिसमें सुगंधवाले, सुन्दर प्रसून प्यारे,
दिन-रात हँस रहे हैं, वह देश कौन-सा है ?
मैदान, गिरि, वनों में हरियालियाँ लहकतीं,
आनंदमय जहाँ है, वह देश कौन-सा है ?
जिसकी अनंत धन से धरती भरी पड़ी है,
संसार का शिरोमणि, वह देश कौन-सा है ?
सबसे प्रथम जगत में जो सभ्य था यशस्वी,
जगदीश का दुलारा, वह देश कौन-सा है ?
पृथ्वी-निवासियों को जिसने प्रथम जगाया,
शिक्षित किया, सुधारा, वह देश कौन-सा है ?
जिसमें हुए अलौकिक तत्वज्ञ ब्रह्मज्ञानी,
गौतम, कपिल, पतंजलि, वह देश कौन-सा है ?

छोड़ा स्वराज्य तृणवत् आदेश से पिता के,
वह राम थे जहाँ पर, वह देश कौन-सा है ?
निःस्वार्थ शुद्ध प्रेमी भाई भले जहाँ थे,
लक्ष्मण-भरत सरीखे, वह देश कौन-सा है ?
देवी पतिव्रता श्री सीता जहाँ हुई थीं,
माता-पिता जगत का, वह देश कौन-सा है ?
आदर्श नर जहाँ पर थे बाल ब्रह्मचारी,
हनुमान, भीष्म, शंकर, वह देश कौन-सा है ?
विद्वान, वीर, योगी, गुरु राजनीतिकों के,
श्रीकृष्ण थे जहाँ पर, वह देश कौन-सा है ?
विजयी बली जहाँ के बेजोड़ सूरमा थे,
गुरु द्रोण, भीम, अर्जुन, वह देश कौन-सा है ?
जिसमें दधीचि, दानी हरिचंद, कर्ण-से थे,
सब लोक का हितैषी, वह देश कौन-सा है ?
वाल्मीकि, व्यास ऐसे जिसमें महान कवि थे,
श्री कालिदास वाला, वह देश कौन-सा है ?
निष्पक्ष न्यायकारी जन, जो पढ़े लिखे हैं,
वे सब बता सकेंगे, वह देश कौन-सा है ?
हैं कोटि-कोटि भाई सेवक सपूत जिसके,
भारत सिवाय दूजा, वह देश कौन-सा है ?

—रामनरेश त्रिपाठी

[६]

मातृभूमि

ऊँचा खड़ा हिमालय आकाश चूमता है,
नीचे चरण तले पड़, नित सिन्धु झूमता है ।१।
गंगा, यमुन, त्रिवेणी नदियाँ लहर रही हैं,
जगमग छटा निराली पग-पग छहर रही है ।२।
वह पुण्य-भूमि मेरी, वह स्वर्ण-भूमि मेरी,
वह जन्म-भूमि मेरी, वह मातृ-भूमि मेरी ।३।
झरने अनेक झरते जिसकी पहाड़ियों में
चिड़ियाँ चहक रही हैं, हो मस्त झाड़ियों में ।४।
अमराइयाँ घनी हैं कोयल पुकारती है,
बहती मलय पवन है तन-मन सँवारती है ।५।
वह धर्म-भूमि मेरी, वह कर्म-भूमि मेरी,
वह जन्म-भूमि मेरी, वह मातृ-भूमि मेरी ।६।
जन्मे जहाँ थे रघुपति, जन्मी जहाँ थीं सीता,
श्रीकृष्ण ने सुनाई वंशी, पुनीत गीता ।७।
गौतम ने जन्म लेकर जिसका सुयश बढ़ाया,
जग को दया सिखाई, जग को दिया दिखाया ।८।
वह युद्ध-भूमि मेरी, वह बुद्ध-भूमि मेरी,
वह मातृ-भूमि मेरी, वह जन्म-भूमि मेरी ।९।

[७]

झण्डा-गान

विजयी विश्व तिरंगा प्यारा ।
झण्डा ऊँचा रहे हमारा ॥
सदा शक्ति बरसानेवाला,
प्रेम-सुधा सरसानेवाला,
वीरों को हरषानेवाला,
मातृ-भूमि का तन-मन सारा ।
झण्डा ऊँचा रहे हमारा ॥
स्वतंत्रता के भीषण रण में,
लखकर जोश बढ़े क्षण-क्षण में ।
कांपे शत्रु देखकर मन में,
मिट जाये भय संकट सारा ।
झण्डा ऊँचा रहे हमारा ॥
इस झण्डे के नीचे निर्भय,
लें स्वराज्य हम अविचल निश्चय ।
बोलो भारत माता की जय,
स्वतंत्रता हो ध्येय हमारा ।
झण्डा ऊँचा रहे हमारा ॥
आओ, प्यारे वीरो ! आओ,
देश-धर्म पर बलि-बलि जाओ,

एक साथ सब मिल कर गाओ
'प्यारा भारत देश हमारा ।'
झण्डा ऊँचा रहे हमारा ॥
इसकी शान न जाने पाये,
चाहे जान भले ही जाये,
विश्व-विजय करके दिखलायें,
तब होवे प्रण पूर्ण हमारा ।
झण्डा ऊँचा रहे हमारा,
विजयी विश्व तिरंगा प्यारा ।

—माधव शुक्ल

[८]

जय राष्ट्रीय निशान !

जय राष्ट्रीय निशान !
जय राष्ट्रीय निशान !
जय राष्ट्रीय निशान !
लहर-लहर तू मलय पवन में,
फहर-फहर तू नील गगन में,
छहर-छहर जग के आँगन में,
सबसे उच्च महान !
सबसे उच्च महान !
जय राष्ट्रीय निशान !

मस्तक पर शोभित हो रोली,
बढ़े शूर-वीरों की टोली,
खेलें आज मरण की होली,
वूढ़े और जवान !
वूढ़े और जवान !
जय राष्ट्रीय निशान !

मन में दीन-दुखी की ममता,
हममें हो मरने की क्षमता,
मानव-मानव में हो समता,
धनी गरीब समान,
धनी गरीब समान,
जय राष्ट्रीय निशान !

तेरा मेरु-दण्ड हो कर में,
स्वतंत्रता के महासमर में,
वज्रशक्ति बन व्यापे उर में,
दे दें जीवन-प्राण,
दे दें जीवन-प्राण,
जय राष्ट्रीय निशान !

—सोहनलाल द्विवेदी

[९]

शुभ सुख-चैन की बरखा

शुभ सुख-चैन की बरखा बरसे भारत भाग्य है जागा ।
पंजाब, सिंधु, गुजरात, मराठा, द्राविड़, उत्कल, वंगा,
चंचल सागर, विंध्य, हिमाचल, नीला, यमुना, गंगा
तेरे नित गुण गायें, तुझसे जीवन पायें,
सब जन पायें आशा,
सूरज बनकर जग पर चमके भारत नाम सुभागा ।
जय हो, जय हो, जय हो, जय जय जय जय हो
भारत नाम सुभागा ॥ १ ॥

सबके दिल में प्रीत बसाये तेरी मीठी वाणी,
हर सूबे के रहनेवाले हर मजहब के प्राणी,
सब भेद व फर्क मिटा के, सब गोद में तेरी आके,
गूँथें प्रेम की माला,
सूरज बनकर जग पर चमके भारत नाम सुभागा ।
जय हो, जय हो, जय हो, जय जय जय जय हो,
भारत नाम सुभागा ॥ २ ॥

सुबह सबेरे पंख-पखेरू, तेरे ही गुण गायें,

वास-भरी भरपूर हवाएँ जीवन में ऋतु लायें,
सब मिलकर हिंद पुकारें, जय आजाद हिंद के नारे,
प्यारा देश हमारा।

सूरज बनकर जग पर चमके भारत नाम सुभागा,
जय हो, जय हो, जय हो, जय जय जय जय हो,
भारत नाम सुभागा ॥ ३ ॥

—नेताजी सुभाषचन्द्र वसु

विद्यापीठ-दिनचर्या

पूर्वाह्न

४।। बजे प्रातः जागरण एवं प्रार्थना ।

५ बजे से ६।। बजे तक स्वाध्याय एवं शौचादि कर्म ।

६।। बजे से ७।। बजे तक हवन, व्यायाम एवं जलपान ।

७।। बजे से १०।। बजे तक वर्गों में अध्ययन ।

मध्याह्न से अपराह्न तक

१२।। बजे से २ बजे तक लेखन एवं प्राप्त पाठ पूरा करना ।

२।। बजे से ४।। बजे तक वर्गों में अध्ययन ।

४।। बजे से ६।। बजे तक जलपान एवं विभिन्न खेल ।

६।। बजे से ७ बजे तक सांध्य-प्रार्थना ।

७ बजे से ८।। बजे तक स्वाध्याय ।

८।। बजे भोजन तदनन्तर ९ बजे रात्रि में शयन ।

ऋतु-परिवर्तन के कारण एवं आवश्यकतानुसार इस दिनचर्या में परिवर्तन भी किया जा सकता है ।